पहले बनती है फिर प्रकट होती है सामाजिक शक्ति : बत्तीसवाँ न्यूज़लेटर (2026)

बंद दरवाज़ों में भी अब सुरक्षित महसूस नहीं होता, मिशेक मसाम्वु (ज़िम्बाब्वे), 2014

प्यारे दोस्तो,

ट्राईकॉन्टिनेंटल : सामाजिक शोध संस्थान की ओर से अभिवादन।

1943 के बंगाल अकाल से लेकर 1977 में पहली वामपंथी सरकार के चुनाव तक, पश्चिम बंगाल के कम्युनिस्ट आंदोलन ने बहुत धैर्य से मज़दूरों, किसानों, शरणार्थियों, छात्रों और संस्कृतिकर्मियों में अपनी जगह बनाई। भोजन और भूमि से जुड़े अभियानों, मज़दूर यूनियनों की ताक़त बनाने, शरणार्थियों को लामबंद करने और राज्य के दमन का प्रतिरोध आदि के

ज़रिए वामपंथ ने जनता की फ़ौरी माँगों से कहीं ज़्यादा हासिल किया है : इसने संघर्ष के संगठन और मंच खड़े किए, आयोजकों की कई पीढ़ियों को प्रशिक्षित किया और ऐसी राजनीतिक संस्कृति विकसित की, जिसमें समाज के विभिन्न तबकों की शिकायतों और समस्याओं को एक साझा संघर्ष का हिस्सा समझा जा सकता था। 1977 की जीत ने अचानक मतपेटी के जरिए सामाजिक शक्ति [illegible] नहीं की ; बल्कि उसने उस सामाजिक शक्ति को [illegible] किया, जिसका निर्माण तीन दशकों से भी अधिक समय में हुआ था।

लोकप्रिय ऊर्जा को कभी-कभार सामाजिक शक्ति मान लेने की भूल कर दी जाती है। एक राजनेता भारी भीड़ जुटा ले, कोई नारा सोशल मीडिया में मशहूर हो जाए, किसी धरने प्रदर्शन में सड़कें जाम हो जाएँ और कह दिया जाता है कि एक आंदोलन ताक़तवर बन गया है। ये सब प्रसिद्धि, उत्साह और गति के प्रतीक हैं, ज़रूरी नहीं कि ये एक संगठित शक्ति का सबूत दें: एक भीड़ तितर-बितर हो सकती है, कोई चुनाव हारा जा सकता है और नारे जितनी जल्दी गूँजते हैं उतनी ही जल्दी ख़ामोश भी हो जाते हैं। जबकि सामाजिक शक्ति अधिक गहरी होती है ; यह किसी समाज के भीतर एक वर्ग के कार्य करने, लोगों की आकांक्षाओं को दिशा देने और दुनिया के बारे में अपनी समझ को युग की **आम-समझ** का हिस्सा बनाने की संगठित क्षमता है।

मीठी यादें, गेरार गाबायेन (सेनेगल), 2019

पूँजीपति वर्ग के पास सामाजिक शक्ति सिर्फ़ इसलिए नहीं होती कि वह फ़ैक्टरियों, बैंकों, डिजिटल प्लैटफ़ॉर्म और बड़ी जागीरों का मालिक होता है। बल्कि इसके पीछे एक वजह यह भी है कि इसने अपने हितों को समाज के हित के रूप में

स्थापित करने वाले संस्थानों का निर्माण किया है। इसका मीडिया निजी संपत्ति की रक्षा को आज़ादी की रक्षा के तौर पर पेश करता है, इसके अर्थशास्त्री सार्वजनिक ख़र्च में कटौती को 'राजकोषीय ज़िम्मेदारी' के रूप में व्याख्यायित करते हैं, इसके शैक्षणिक संस्थान सिखाते हैं कि प्रतिस्पर्धा मानव स्वभाव की अभिव्यक्ति है, और इसका क़ानून संपत्ति के अधिकार को भोजन, आवास और गरिमामय जीवन के अधिकार से ऊपर रखता है। पूँजीपति वर्ग को सबको अपने नज़रिए से सहमत करवाने की ज़रूरत नहीं पड़ती ; इसे तो बस अपनी धारणाओं को स्वाभाविक साबित करना होता है, सम्मानजनक बहसों के दायरे बाँधने होते हैं और यह सुनिश्चित करना होता है कि इसके अलावा किसी भी विकल्प के बारे में सोचने से पहले ही उसे काल्पनिक मान लिया जाए। यही है पूँजीवादी वर्चस्व : शासक वर्ग की वह क्षमता जिससे वह एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था के लिए स्वीकृति तैयार करती है जो समाज के हितों की बात करती हुई दिखाई तो देती है लेकिन वह शासक वर्ग के हित साधती है।

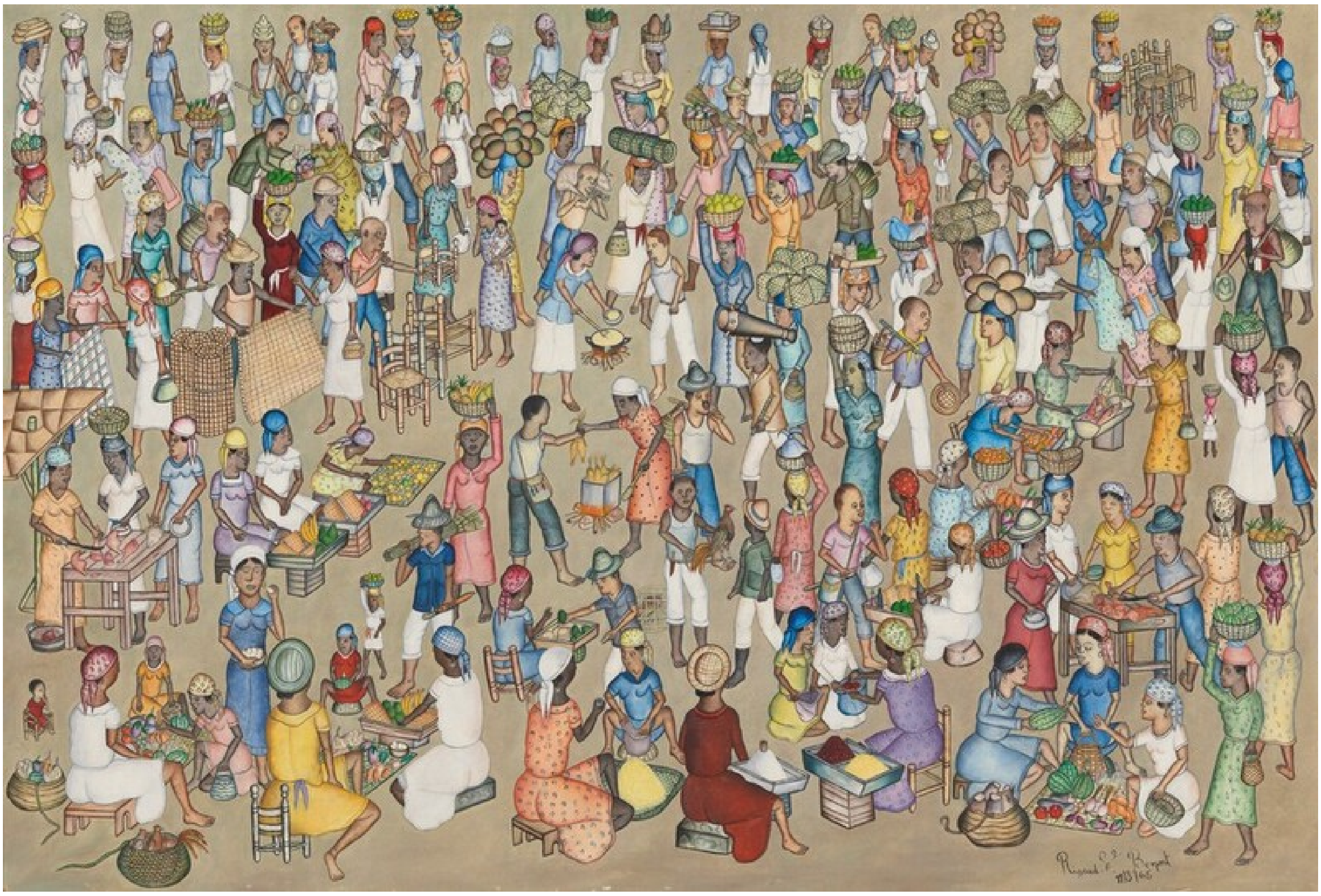

बाज़ार, रीगो बेनोइट (हैती), 1965

पूँजीवादी सामाजिक शक्ति सिर्फ़ स्वीकृति पर नहीं टिकी होती बल्कि स्वीकृति और बहकावे व दबाव के मिश्रण पर खड़ी होती है। मीडिया और स्कूल तो इसे गढ़ते ही हैं पर साथ ही पुलिस, न्यायालय और जेलें भी इसमें पूरा साथ देते हैं। उदाहरण के लिए, पुलिस द्वारा किसी हड़ताल को तोड़े जाने से पहले, अख़बारों के लिए ज़रूरी है कि वे हड़तालियों को ख़ुदगर्ज़ दिखाएँ। शासक वर्ग अपनी सामाजिक शक्ति का प्रयोग अपने दृष्टिकोण को आम-समझ के तौर पर पेश करके करता है। साथ ही दबाव बनाने वाले संस्थानों को भी तैयार रखता है कि अगर स्वीकृति नहीं मिले तो इसके दृष्टिकोण की रक्षा वे करें।

हालाँकि, पूँजीवादी वर्चस्व कभी पूरी तरह कायम नहीं हो सकता, जब तक कि पूँजीवादी समाज के वादे बार-बार श्रमिक वर्ग के जीवन की वास्तविकताओं से टकराते रहें। उदाहरण के लिए भारत में युवाओं के नेतृत्व में हुए हालिया विरोध-

प्रदर्शन एक तीखे **विरोधाभास** को उजागर करते हैं: कॉलेज पास करके निकली युवा पीढ़ी को कहा जाता है कि शिक्षा उनके रोज़गार की गारंटी है, लेकिन इस पीढ़ी को मिलती है बेरोज़गारी और अनिश्चित रोज़गार। ऐसे विरोधाभास एक नई आम-समझ की संभावना पैदा करते हैं, लेकिन पीड़ा अपने-आप समाजवादी चेतना का निर्माण नहीं करती। असुरक्षा या तो एकजुटता को जन्म दे सकती है, या इसका इस्तेमाल करके प्रवासियों, शोषित जातियों, धार्मिक या नस्लीय अल्पसंख्यक समुदायों, महिलाओं या अन्य कामगारों को ज़िम्मेदार ठहराने के लिए जनता को भड़काया जा सकता है। पुराने वर्चस्व का संकट वामपंथ के लिए रास्ता खोल सकता है—संगठन और संघर्ष के जरिए। लेकिन यही संकट डर, नाराज़गी और किसी को बलि का बकरा बनाने की राजनीति के जरिए अति-दक्षिणपंथ के लिए भी रास्ता खोल सकता है। हालात ख़ुद कुछ नहीं कहते ; हमें यह समझना पड़ता है कि उनका मतलब क्या है। और लोगों को हालात की किस तरह व्याख्या करनी चाहिए, इसे लेकर होने वाला संघर्ष भी सामाजिक शक्ति हासिल करने के संघर्ष का हिस्सा है। लेकिन यह समझ अपने-आप नहीं बनती। यह लोगों की सामूहिक गतिविधियों और संघर्षों के जरिए बनती है।

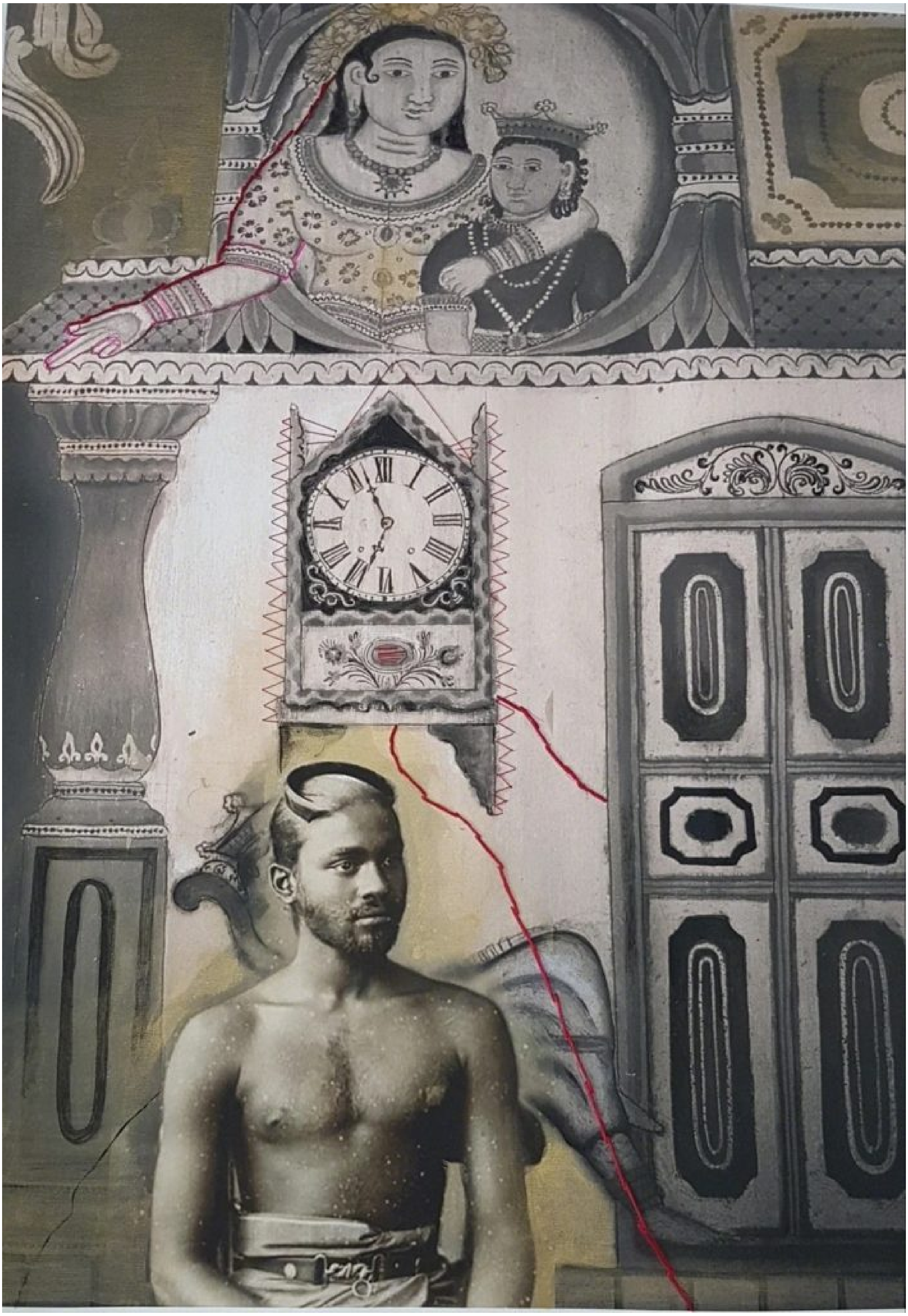

समय का नक़्शा, सजीवा कुमारी (श्रीलंका), 2018

भूमि पर अधिकार के लिए किसानों के संघर्ष सीधे तौर पर संपत्ति के अधिकार को चुनौती देते हैं। और वहीं महिला आंदोलन दिखाते हैं कि घरों के भीतर नियंत्रण निजी मसला नहीं बल्कि शक्ति के सामाजिक संगठन का ही एक हिस्सा है। हर गंभीर आंदोलन में एक सीख छिपी होती है, ये लोगों को सिखाते हैं कि उनके साथ कौन खड़ा है और उनके विरोध में कौन। साथ ही यह भी कि कौन से संस्थान मौजूदा व्यवस्था का बचाव करते हुए भी तटस्थ होने का दावा करते हैं। वे अपने भीतर और एक-दूसरे में ऐसी क्षमताओं को पहचानते हैं, जिन्हें पूँजीवादी समाज उन्हें कमतर आँकना सिखाता है। इसलिए सामाजिक शक्ति सिर्फ़ संचार माध्यमों से नहीं बनाई जा सकती। पोस्टर, अख़बार, वीडियो और सोशल मीडिया अभियान ज़रूरी हैं लेकिन ये संगठन का विकल्प नहीं हैं। लोग दुनिया को देखने का अपना नज़रिया सिर्फ़ इसलिए नहीं बदल देंगे कि उनके सामने कोई सही मत पेश कर देगा। चेतना सामूहिक गतिविधि में शामिल होकर बदलती है।

जन लामबंदी किसी घटना के इर्द-गिर्द लोगों को एकजुट करती है, जबकि संगठन उन्हें एक साथ बनाए रखता है और लंबे समय तक चलने वाले संघर्ष के लिए उनकी क्षमता विकसित करता है। लामबंदी लोगों के गुस्से को सामने ला सकती है, लेकिन संगठन उस गुस्से को अनुभव और सीख, अनुशासन, नेतृत्व और रणनीति में बदल देता है। जब जनता की ऊर्जा संगठित क्षमता में बदल जाती है, तभी सामाजिक शक्ति पैदा होती है। इसका निर्माण मज़दूर यूनियनों, किसान संगठनों, महिला संगठनों, स्थानीय कमेटियों, राजनीतिक स्कूलों, सांस्कृतिक संस्थानों, सामुदायिक मीडिया और क्रांतिकारी दलों के ज़रिए होता है। ये संस्थान एक संघर्ष से सीखे गए सबक़ को बचाकर अगले संघर्ष तक ले जाते हैं। ऐसे संगठनों के निर्माण के काम में धैर्य की ज़रूरत है। और इसके ज़रिए ही सामाजिक शक्ति उन क्षमताओं को आकार देती है जो एक नए समाज के लिए आवश्यक हैं।

शहरी अव्यवस्था XI, दाउदा बा (सेनेगल), 2021

पूँजी की **ताक़तों** में से एक है मज़दूर वर्ग में बिखराव या बँटवारा। मज़दूर वर्ग फ़ैक्टरियों और खेतों, दफ़्तरों और स्कूलों, घरों और असंगठित क्षेत्र में बिखरा हुआ है। श्रमिक उत्पादन और समाज के संचालन के लिए जरूरी हैं, फिर भी उन्हें अक्सर अपने राजनीतिक अधिकारों से वंचित किया जाता है और समाज में उनके योगदान को कमतर आँका जाता है। पूँजी इस बिखराव और अपमान को बँटवारे में बदल देती है : संगठित क्षेत्र में मज़दूरों को कहा जाता है कि वे असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों से डरें, नागरिकों को कहा जाता है कि वे प्रवासियों से डरें, शहरी मज़दूरों को किसानों की अनदेखी करने को कहा जाता है, पुरुषों को महिला मुक्ति को ख़तरे के रूप में देखने को कहा जाता है। धर्म, नस्ल, जातीयता, जाति और भाषा के आधार पर लोगों के बीच ऐसे स्थायी राजनीतिक विभाजन पैदा कर दिए जाते हैं, जो उन्हें एक-दूसरे से अलग करते रहते हैं। समाजवादी संगठन का काम यह दिखावा करना नहीं है कि ये भेद मौजूद ही नहीं हैं, और न ही यह माँग करना है कि हर संघर्ष एक अमूर्त वर्ग-एकता में समा जाए। उसका काम ऐसी एकता बनाना है, जो यह दिखाए कि शोषण और दमन के अलग-अलग रूप एक ही सामाजिक व्यवस्था से जुड़े हुए हैं।

हमारी परंपरा में, इस एकता के निर्माण को 'ऐतिहासिक गठबंधन' का निर्माण कहा जाता है – यानी सामाजिक ताक़तों का एक ऐसा गठजोड़, जो न केवल अस्थायी सहमति से, बल्कि एक साझा राजनीतिक परियोजना से एकजुट हो। ऐसे गुट की नींव मज़दूर वर्ग में होनी चाहिए, और इसे उन सभी की आकांक्षाओं के बारे में सोचना चाहिए, जिनका जीवन पूँजी, साम्राज्यवाद, पितृसत्ता, नस्लवाद, जातिगत उत्पीड़न, और प्रकृति के विनाश से बर्बाद हुआ है। राजनीतिक कार्यक्रम ऐसा नहीं होना चाहिए जिसमें हर सामाजिक समूह के लिए अलग-अलग माँगों की एक सूची बना दी जाए। उसे संकट

की एक स्पष्ट और तार्किक समझ देनी चाहिए और समाज को एक भरोसेमंद दिशा दिखानी चाहिए। उसे यह बताना चाहिए कि सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाएँ, कृषि सुधार, सम्मानजनक रोजगार, महिलाओं की मुक्ति, पर्यावरण की बहाली और राष्ट्रीय संप्रभुता—ये सब एक ही साझा परियोजना का हिस्सा हैं। शासक वर्ग कहता है कि समाज को पूँजी की स्वतंत्रता के आधार पर चलना चाहिए। इसके विपरीत, समाजवादी ऐतिहासिक गठबंधन को इस बात पर जोर देना चाहिए कि समाज श्रम की गरिमा और जीवन को बनाए रखने की जरूरतों के आधार पर संगठित हो। इसी तरह सामाजिक शक्ति अपना वर्चस्व कायम करती है सिर्फ़ प्रचार या संदेश देने की रणनीति से नहीं, बल्कि संगठन और संघर्ष के जरिए राजनीतिक नेतृत्व तैयार करके।

पंछियों का महोत्सव, कार्लोस मेरिदा (मेक्सिको), 1959

शासक वर्ग दुनिया की एक भावनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करता है। वह मज़दूरों से कहता है कि उनके पड़ोसी खतरनाक हैं, विदेशी उनका भविष्य चुरा रहे हैं, ग़रीबी शर्मनाक है, और सामूहिक कार्रवाई बेकार है। वह आक्रोश को पोषित करता है, जबकि उस आक्रोश को व्यवस्था की समझ में विकसित होने से रोकता है। और जनता के वैध गुस्से को उन लोगों की ओर मोड़ देता है, जिनके पास उससे भी कम ताक़त है। यही वह भावनात्मक जमीन है, जिस पर एक **खास किस्म का चरम-दक्षिणपंथ** अपना संगठन खड़ा करता है। वह उन लोगों को अपनापन और जुड़ाव का एहसास देता है, जिन्हें लगता है कि उन्हें अकेला छोड़ दिया गया है ; उन लोगों को गर्व का एहसास देता है, जिन्हें अपमानित किया गया है ; और उन लोगों को निश्चितता का भरोसा देता है, जिनका जीवन असुरक्षित हो गया है। उसकी दी हुई व्याख्याएँ भले ही ग़लत हों, लेकिन जिन तकलीफ़ों की वह बात करता है, वे वास्तविक हैं।

एक समाजवादी राजनीति, जो केवल आँकड़ों से जवाब देती है, कमज़ोर ही बनी रहेगी। उसे **गरिमा**, साहचर्य, साहस और आशा देनी होगी, खोखले नारों के रूप में नहीं, बल्कि संगठन के माध्यम से सृजित अनुभवों के रूप में। इसके लिए सांस्कृतिक क्षेत्र बहुत अहम हो जाता है : गीत, कविता, रंगमंच, दृश्य कला, और सामूहिक आयोजन ऐतिहासिक स्मृति को बचा कर रखते हैं, और एक ऐसे **भविष्य** की झलक दिखाते हैं, जिसका अभी तक नीति-दस्तावेज़ों में पूरी तरह वर्णन नहीं किया जा सका है। क्रांतिकारी संस्कृति लोगों को केवल यह नहीं सिखाती कि उन्हें किसका विरोध करना है, बल्कि यह भी कि वे क्या बनने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। सामाजिक शक्ति के लिए **विचारों का युद्ध** आवश्यक है – क्योंकि शासक वर्ग अपने प्रभुत्व को 'आम-समझ' के रूप में प्रस्तुत करता है। और साथ ही इसके लिए **भावनाओं का युद्ध** भी आवश्यक है, क्योंकि आम-समझ केवल तर्क से नहीं, बल्कि भय, इच्छा, शर्म और **आशा** से भी बनी रहती है।

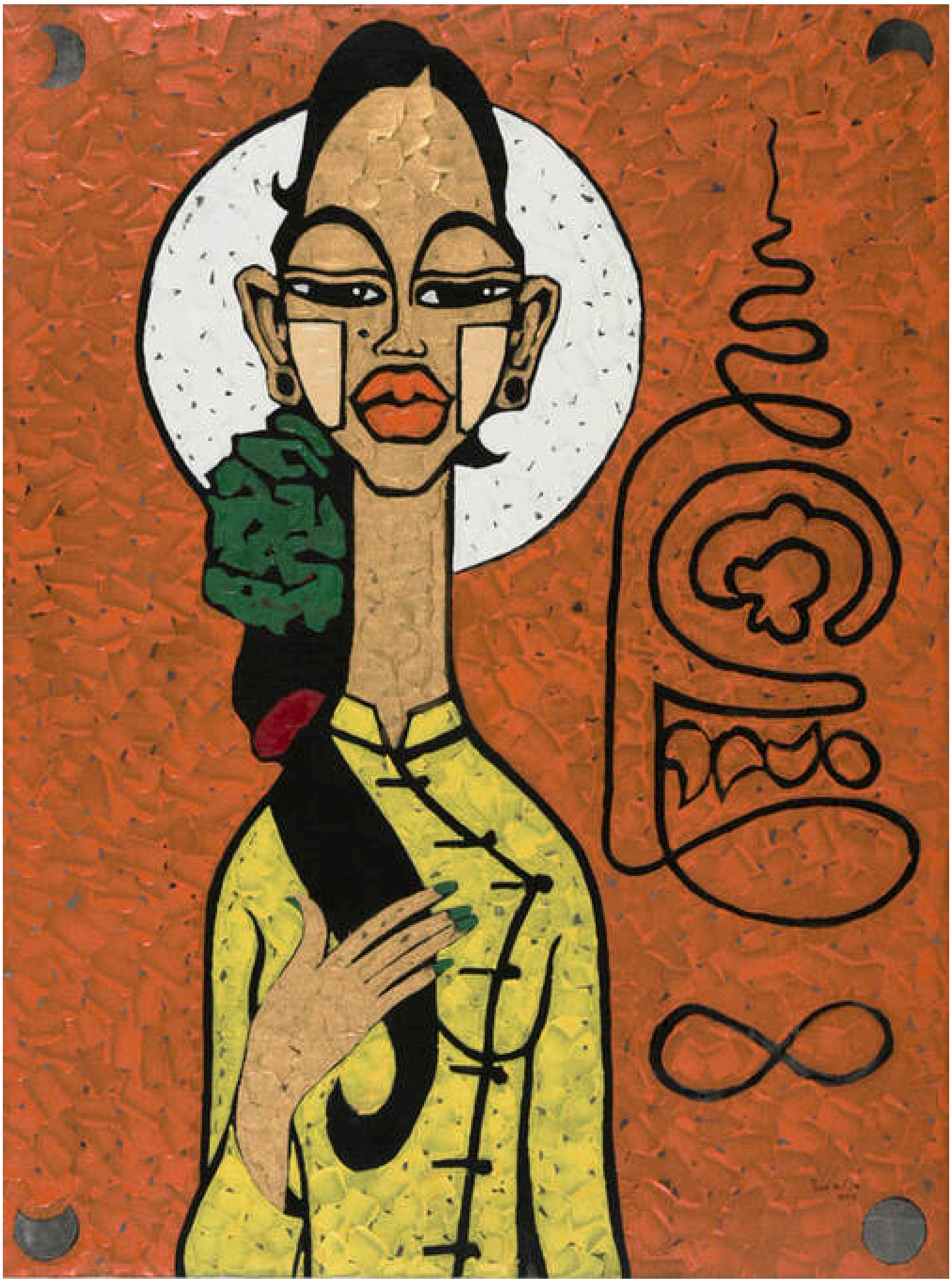

शीर्षकविहीन, ज़्वे मोन (म्यांमार), 2013

सामाजिक शक्ति अपरिहार्य है, लेकिन वह पर्याप्त नहीं है। कोई आंदोलन मजबूत जन-संगठन खड़े कर सकता है, फिर भी पूँजीपति वर्ग निवेश, उत्पादन और राज्य के दमनकारी तंत्र पर अपना नियंत्रण बनाए रख सकता है। इसलिए समाजवादी परियोजना को ऐसी रणनीति विकसित करनी होगी, जो सामाजिक शक्ति को सरकारी सत्ता में बदलने और स्वयं राज्य का रूपांतरण करने में सक्षम हो। हालाँकि, चुनावी जीत को इस प्रक्रिया की पूर्णता समझने की भूल नहीं करनी चाहिए। वामपंथी पार्टी सरकार बना सकती है, जबकि बैंक, बड़ी कंपनियाँ, वरिष्ठ नौकरशाह, न्यायाधीश, सैन्य अधिकारी और मीडिया के एकाधिकारवादी संस्थान पुराने सत्ताधारी गठजोड़ के प्रभाव में बने रह सकते हैं। यही कारण है कि वामपंथी सरकार को जनता के स्वतंत्र संगठन को मजबूत करना चाहिए और जन संगठनों को सहानुभूति रखने वाले मंत्रियों के निष्क्रिय समर्थक बनकर नहीं रह जाना चाहिए। सामाजिक शक्ति ही किसी परियोजना को एक सरकार, एक चुनाव या

नेताओं की एक पीढ़ी के आगे भी टिके रहने की क्षमता देती है।

राजनीति को केवल फ़सल कटने के समय यानी उसके अंतिम नतीजों के स्तर पर देखने की प्रवृत्ति होती है—किसने चुनाव जीता, किसकी सरकार बनी, कौन-सा कानून पारित हुआ और सत्ता के केंद्र पर किसका क़ब्ज़ा हुआ। लेकिन हर फसल के कटने से पहले एक लंबा और अधिकतर अदृश्य श्रम होता है। बीजों का चयन और रोपण किया जाता है, मिट्टी को दुरुस्त किया जाता है, पानी लाया जाता है, और नन्हें पौधों को गर्मी व बीमारी से बचाया जाता है। जब फसल अंततः काटी जाती है, तो इस अधिकांश काम को भुला दिया जाता है। इसके बावजूद सामाजिक शक्ति का निर्माण वही धैर्यवान श्रम है : यह तब होता है, जब कोई काडर दिन भर के काम के बाद एक राजनीतिक वर्ग का नेतृत्व करता है ; जब कोई यूनियन संगठनकर्ता किसी ऐसे मज़दूर के पास जाता है, जो नौकरी से निकाले जाने से डरता है ; जब महिलाएँ हिंसा के ख़िलाफ़ एक समिति बनाती हैं; जब किसान कृषि ऋण की संरचना का अध्ययन करते हैं; और जब युवा किसी ऐसे मोहल्ले में एक सांस्कृतिक समूह बनाते हैं, जिसे राज्य ने भुला दिया है। इनमें से कोई भी काम अकेले समाज को नहीं बदलता, लेकिन साथ में वे ऐसे जन का निर्माण करते हैं, जो बदलाव ला सकता है।

जनता में क्षमता की कमी नहीं है ; कमी उन संगठित साधनों की है, जिनके जरिए वह अपनी क्षमता को पहचान सके, उसे एकजुट कर सके और उसका इस्तेमाल कर सके। सामाजिक शक्ति तब पैदा होती है, जब लोग स्वयं को केवल इतिहास के शिकार के रूप में देखना बंद कर देते हैं और यह समझने लगते हैं कि वे इतिहास को बनाने की क्षमता रखते हैं।

स्नेह सहित,

विजय